Toppersnotes®
Unleash the topper in you

UGC-NET

दर्शनशास्त्र

NATIONAL TESTING AGENCY (NTA)

पेपर – 2 || भाग – 2

पारम्परिक पाश्चात्य दर्शन : प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक : ज्ञान मीमांसा तथा तत्व मीमांसा

SIERRA INNOVATIONS

UGC NET - दर्शनशास्त्र

S. No.	Content	Page No.
1.	इकाई-II पारम्परिक पाश्चात्य दर्शन : प्राचीन, मध्यकालीन, तथा आधुनिक : ज्ञान मीमांसा तथा तत्व मीमांसा	1-196
	● सुकरात-पूर्व दार्शनिक	1
	● सोफिस्ट और सुकरात	14
	● प्लेटो	28
	● अरस्तू	36
	● मध्यकालीन दर्शन ○ संत ऑगस्टाइन ○ संत एन्सेल्म ○ संत थॉमस एक्विनास	45
	● आधुनिक पाश्चात्य दर्शन	59
	● डेकार्त	65
	● स्पिनोजा	78
	● लाइबनित्ज़	94
	● लॉक	112
	● बर्कले	126
	● ह्यूम	140
	● काण्ट	158
	● हेगल	190

इकाई – 2

सुकरात-पूर्व दार्शनिक

यूनानी लोग मूलतः दार्शनिक थे, क्योंकि वे ज्ञान प्रेमी थे। 'ज्ञान प्रेमी' उसे कहते हैं जिसमें ज्ञान प्राप्त करने की वास्तविक चाह होती है। 'फिलॉसफी' (दर्शन) शब्द यूनानी भाषा से आया है। ग्रीक शब्द फिलोसोफिया का अर्थ है; ज्ञान से प्रेम । दर्शन का उद्देश्य सदैव प्रज्ञा से होना चाहिए। प्रज्ञो विश्व के परम कारक पर प्रकाश डालती है। यह परम कारक यूनान में आर्क कहलाता था। यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष अनुभव की परिघटना जैसे जल, वायु और अग्नि, जिसकी अभिव्यक्ति इन्द्रिय जगत जैसे की वर्षा, पवन, ज्वाला, सूर्य, दिन, रात आदि में होती है, के समान नहीं है। इन्द्रिय ज्ञान ने यूनानियों के जीवन में कोतुहल उत्पन्न किया। इन अद्‌भुत घटनाओं के पीछे उन्हें एक आधारभूत कारण दिखाई पड़ता था। आयोनी काल में ब्रहमांड की बाह्य प्रकृति को पहली बड़ी समस्या के रूप में माना गया। इस समस्या के बारे में जिज्ञासा और विचार लगभग 585 से 5वीं शताब्दी इ.पू. के मध्य तक निरन्तर चलता रहा। यूनानी दर्शन के विकास की पहली अवस्था प्रकृतिवादी थी। इसके प्रयास प्रकृति के लिए, प्रकृति के साथ, प्रकृति के द्वारा और प्रकृति अभिमुख थे। यूनानी जन्म, वृद्धि, अपक्षय एवं मृत्यु की वास्तविकता से काफी प्रभावित थे। यह उनकी स्वंय के लिए ज्ञान की खोज थी। चीजों की उत्पत्ति और ब्रहमांड के रहस्य इसके मुख्य बिंदु थे। यह एक ब्रहमांडीय समस्या थी। यह समस्या मुख्य रूप से दो अन्य समस्याओं से संबन्टि त थी। ब्रहमांड का मूल तत्व क्या है? और उनकी उत्पत्ति कहां से होती है?

थेलस (624-548 ई.पू.)

हिरोडोटस नामक इतिहासकार, जिन्होंने सबसे पहले ग्रीक शब्द फिलो-सोफिया का उपयोग किया, थेलस को सात संतों; थेलस, बिएन्ट्स, पिटेकस, सोलोन, क्लिओब्यूल, माइसन और चीलोन में से एक मानते थे। अरस्तू ने सामान्यतः 'संत' शब्द का उपयोग दार्शनिकों के लिए किया था और उन्होंने विशेषरूप से थेलस को "दर्शनशास्त्र का आरंभकर्ता" माना था। इन सात संतों का ज्ञान महज एक नैतिक ज्ञान या व्यवहारिक धार्मिकता तक सीमित था।

थेलस, जिनको पहला आयोनी दार्शनिक होने का गौरव प्राप्त है, मिलेटस में फले फूलें। यह एशिया माइनर में एक यूनानी कोलोनी थी। यह शहर अब आधुनिक टर्की में है। थेलस के समय में यह एक यूनानी शहर था। उन्होंने संभवतः मिश्र या वेबीलोन के शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त की थी। उस समय मिलेटस की मिश्र में कोलोनीयाँ थी।

हमें थेलस के जीवन के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। उनके जन्म और मृत्यु की तिथियां भी निश्चित नहीं है। तथापि उनका जन्म लगभग 624 ई.पू. में हुआ माना जाता है। वे मिश्र आए और लाइडिया के विशाल केन्द्र की यात्रा की जो उस समय मिलेटस और पूरे आयोनिया से संबद्ध एक शक्तिशाली राज्य था। थेलस यूनान के पहले दार्शनिक थे। उन्हें राजनेता, गणितज्ञ और खगोलशास्त्री होने का गौरव प्राप्त था। थेलस ने 28 मई 585 ई. पू. को हुए पूर्ण सूर्य ग्रहण की सही भविष्यवाणी कर दी थी। थेलस की मृत्यु 548 ई.पू. में हुई।

थेलस एक महत्वपूर्ण गणितज्ञ भी थे और उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण गणितीय विचारों को सिद्ध किया था। उन्होंने अपनी परछाई का परिकलन करके एक पिरामिड की ऊंचाई को, जब उनकी परछाई उनकी लंबाई के बराबर हो गई के आधार पर, मापा था। थेलस ने पुष्टि की कि –

- एक वृत्त अपने व्यास द्वारा द्विभाजित रहता है।
- किसी भी समद्धिबाहु त्रिकोण के आधार के कोण बराबर होते हैं।
- यदि दो सीधी रेखाएं एक दूसरे को काटती हैं, तो विपरीत कोण समान होते हैं।
- यदि दो त्रिकोणों में दो कोण और एक पार्श्व समान होता है, तो दोनों त्रिकोण एक समान होते हैं।

थेलस का मुख्य प्रश्न ब्रहमांड के मूल तत्व के बारे में था, इसलिए उन्होंने ब्रहमांड के मूल आयोनी और कारण की खोज में स्वयं को समर्पित किया। उन्होंने जल को मूल तत्व माना। सम्भवतः पाइथागोरसवादी दार्शनिक उनका यह विचार महासागरों के मिथक और टेथी के महासागर के देवता से प्रभावित था। जल में ठोस, द्रव और वाष्प तीनों रूपों में ढलने की क्षमता होती है। जल सूर्य के ताप से वाष्पित हो जाता है। थेलस के अनुसार यह जल का अग्नि में रूपांतरण है। जल पुनः वर्षा के रूप में पृथ्वी पर वापस आ जाता है। जल जीवन के लिए अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि पोषण, बीज और ताप, जो जीवन के लिए अनिवार्य है, में नमी या आर्द्रता होती है। अतः जल ही मूल तत्व हैं और सभी वस्तुएँ (फिजिस) जल (आक) थी और जल है। पृथ्वी जल पर तैरने वाली एक सपाट डिस्क है। अतः जल सभी वस्तुओं का कारक है। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह महसूस किया कि प्रकृति सर्वचैतन्य है। उनके इस विचार के मूल में तीन मुख्य पूर्वानुमान थे। वे अपनी इस मान्यता की पुष्टि करना चाहते थे कि ब्रहमांड का एक ही स्रोत है अर्थात 'जल' । वास्तव में, 'एक' के प्रश्न को वे ही प्रकाश में लाए थे :

- उनका मानना था कि ब्रहमांड की मौलिक व्याख्या किसी 'एक' आधारभूत तत्व से ही सम्भव है। ब्रहमांड के रहस्य के पीछे दो सत्ताऐं नहीं हो सकती हैं। प्रकृति का नियंत्रण करने वाला तत्व एक ही होना चाहिए।
- यह एक मात्र सत् अवश्य ही कोई 'तत्व' (वस्तु) होना चाहिए। इस एक सत् को अवश्य ही निश्चित भी होना चाहिए। यह निश्चित तत्व जल है, जो प्रत्येक वस्तु में पाए जाने की क्षमता रखता है।
- इस एक 'तत्व' में स्वयं में गतिमान और परिवर्तित होने की क्षमता होनी चाहिए।

तात्विक समस्या और समाधान

उपरोक्त चिन्तन के आधार पर उन्होंने "एक और अनेक' की तात्विक समस्या पर विचार किया। किस प्रकार जीवों की अनेकता (फिजिस) को एकता (आकी के एक विशिष्ट सिद्धान्त से समझाया जा सकता है? थेलस अनेकता शब्द की व्याख्या किस प्रकार करते हैं? उनके अनुसार दार्शनिक चिन्तन की दृष्टि से हमें चीजों को समष्टि के रूप में देखना होगा। इस समष्टि को स्थिर निर्जीव वस्तुओं के योग के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। इस समष्टि में एक एकल सत के रूप में प्राण होता है। जबकि अन्य वस्तुओं का अपना निजी अस्तित्व होता है | चेतना प्राण ही वह तत्व है जो सभी प्रकार की अनेकताओं में एकता लाता है। यह सत् का एक सजीव दर्शन है। इसलिए अरस्तू ने डी एनीमा (DeAnima) में थेलस को इस प्रकार उद्धृत किया है; "सभी वस्तुओं में ईश्वर है"; और इसलिए फिजिस अपने अस्तित्व और परिवर्तन दोनों रूपों में दिव्य है। हमारे पास जो है वह महज प्राथमिक प्रतिबिम्ब स्वरूप है लेकिन यह दार्शनिक निहितार्थों से पूर्ण है।

थेलस का मानना था कि "सभी वस्तुएं ईश्वर से पूर्ण है। संभवतः इसके लिए उन्होंने यह सोचा होगा कि ब्रहमांड जीवन के अदृश्य बीजों से भरा है। उन्होंने देखा कि गर्मियों के के बाद जल्दी ही पृथ्वी नए जीवन का सृजन आरंभ कर देती है। जल पृथ्वी पर समस्त जीवन के लिए आदि तत्व या प्रथम कारक हो सकता है। यह स्वयं को एक से दूसरे रूप में परिवर्तित कर सकता है : ठोस, द्रव और पुनः अदृश्य जैसे वाष्प में। जब वे यह कहते हैं कि जल ब्रहमांड का आर्क है, तो उनका यह अर्थ नहीं होता है कि यह आर्क शुरूआत है, बल्कि यह तो धारित सिद्धांत या उपादान कारण है। उनके अनुसार, यह आर्क एक तत्व है अर्थात यह ईश्वर नहीं है। यह तत्व (जल) परम सत् के रूप में आर्द्र है।

अनैक्सीमेन्डर (614-450 ई.पू.)

अनैक्सीमेन्डर थेलस के शिष्य थे और लगभग 614 से 510 ई.पू. के बीच उनका जीवनकाल था। उन्होंने राजनैतिक जीवन में भागीदारी की थी। उन्होंने धूपघड़ी की रचना करने के लिए स्पार्टा की यात्रा की थी। काला सागर (Black Sea) के मेलिसियाई नाविकों के लिए उन्होंने मानचित्र भी बनाया था। उन्होंने कहा कि पृथ्वी एक बेलनाकार पिंड है और यह ब्रहमांड के केन्द्र में स्थित है। पृथ्वी किसी के सहारे से नहीं टिकी है, बल्कि अन्य पिंडों द्वारा साम्यावस्था में बनी हुई है। ये बातें वैज्ञानिक मामलों में उनकी रूचि को दर्शाती है।

अनैक्सीमेन्डर ने थेलस की तरह सभी वस्तुओं के मूल सिद्धान्त और उनके अन्तिम उद्देश्य को जानने का प्रयास किया। परन्तु उन्होंने, थेलस के विपरीत, निष्कर्ष निकाला कि यह जल के जैसा कोई विशेष प्रकार का तत्व नहीं है। यदि परिवर्तन, जन्म, वृद्धि और अपक्षय जल के आन्तरिक परिवर्तन के परिणाम है, तो जल में अन्य सभी वस्तुएं वापिस समाहित क्यों नहीं हो जाती है? इस से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि परम द्रव्य एक अपरिमित, नित्य तथा अनिश्चित एवं अस्पष्ट तत्व है। यह तत्व जल अथवा अन्य इसी प्रकार की परिमित वस्तुओं से भिन्न है। इस अपरिमित द्रव्य से सभी स्वर्ग और पृथ्वी का उद्भव हुआ है। यह अनंत और शाश्वत है।

यह सिद्धान्त सभी तत्वों जैसे जल, पृथ्वी और अग्नि को नियंत्रित और समाहित करता है, लेकिन इसे इन समान तत्वों के रूप में नहीं समझना चाहिए। यह मूल सिद्धान्त यूनानी भाषा का अपेरोन (apeiron) है तथा यह दिव्य, अचल, उत्पन्न न होने वाला, अपरिवर्तनीय, पूज्य और पूर्ण न्याय है। यह सभी कारकों और प्रभावों के पीछे का सत् है।

अनैक्सीमिनिज (6 वीं शताब्दी ई.पू.)

मिलेसियन परम्परा के तीसरे दार्शनिक अनैक्सीमिनिज थे। वे अनैक्सीमेन्डर के शिष्य थे। अनैक्सीमिनिज ने वापस थेलस की चिंतन की पद्धति को अपनाया। उन्होंने कहा कि जगत् और स्वर्ग का मूल तत्व वायु, वाष्प या कुहासा है। वायु मनुष्य के लिए जीवनदायी तत्व है। वाय की विलुप्ति से मनुष्य सांस लेना बंद कर देगा और उसका अंत हो जाएगा। "जिस प्रकार हमारी आत्मा, वायु होने के कारण, हमें एकसाथ रखती है, उसी प्रकार सांस और वायु पूरे विश्व में व्याप्त है। अतः वायु जगत् का मूल तत्व है, जिससे अन्य सभी वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है।

उन्होंने थेलस के सिद्धान्त पर वापस लौटते हुए कहा कि ब्रहमांड का परम सिद्धान्त कोई एक वस्तु है। उन्होंने देखा कि जल वायु का संघिनित रूप होता है। इसलिए उनके अनुसार वायु से पृथ्वी, जल और अग्नि की उत्पत्ति हुई। संभवतः उनका विचार था कि तथापि पृथ्वी, वायु और अग्नि सभी जीवन की रचना के लिए आवश्यक है, लेकिन सभी वस्तुओं का स्रोत वायु या वाष्प है। वायु विरलीकरण के द्वारा अग्नि भी बन सकती है। वायु वह वस्तु है जो सभी चीजों को गति के लिए अनुप्राणित करती है। यह कोई पवित्र ओर शाश्वत वस्तु है। ब्रहमांड एक पवित्र वृत्त है, जिसके केन्द्र में दिव्य शाश्वत अग्नि या न्यूमा (Pneuma) स्पन्दन कर रहा है और सभी चीजों को ब्रहमाडीय श्वांस से अनुप्राणित कर रही है। वायु से सभी चीजें विरलीकरण और संघनन की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। संघनन और विश्लीकरण का यह सिद्धान्त ब्रहमांड में तत्वों के अविर्भाव की वैज्ञानिक व्याख्या का उन्नत रूप है।

पाइथागोरस (580-497 ई.पू.)

आयोनी दर्शन पाइथागोरस के कार्य द्वारा दक्षिण इटली में पहुंचा। सामोस के पाइथागोरस (530 ई.पू.) पाइथोगोरसीय दार्शनिक परम्परा के संस्थापक थे। उनका जन्म सामोस में 580 और 570 ई.पू. के बीच हुआ था। वह वर्ष 529 ई.पू. के आसपास दक्षिण इटली में यूनानी कोलोनी में चले गए थे। एम्ब्लीकस मानते थे कि पाइथागोरस दिव्य दर्शन शास्त्र के जनक और मार्ग दर्शक थे। वी. कापेरेली ने लिखा है कि पाइथागोरस का दर्शन, ज्ञान के साथ प्रबल धार्मिक भावना का मिश्रण है। अनैक्सीमिनिज के दर्शन पर उनकी निर्भरता स्पष्ट है। वे मानते हैं कि ब्रहमांड एक पवित्र वृत्त है, जिसके केन्द्र में दिव्य शाश्वत् अग्नि या न्यूमा है, जो केंन्द्र में स्पंदन कर रहा है और सभी चीजों को ब्रहमांडीय श्वांस से अनुप्राणित कर रहा है। नव-पाइथागोरियनों ने केन्द्रीय अग्नि की पहचान यूनानी जेयुस अथवा आदि देव ओलम्पस, केस्ल ऑफ जेयुस आदि से की है। अग्नि यहां एकता के कारक के रूप में है, जिससे हर वस्तु की उत्पति हुई है। उन्होंने ब्रहमांडविज्ञान, मानवविज्ञान और नैतिकशास्त्र पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। पाइथागोरस के समय के समाज में धार्मिक पुनरूद्धार की प्रबल भावना थी। अतः उनसे वास्तविक धार्मिक शिक्षाएं प्रदान करने की शुरूआत हुई।

नैतिक संस्था

पाइथागोरस ने नैतिक, धार्मिक और राजनैतिक उद्देश्य के लिए एक संस्था की स्थापना की। उनका उद्देश्य अपने अनुयायियों के बीच राजनैतिक सद्गुणों को विकसित करना था, जिससे उन्हें राष्ट्र की भलाई की शिक्षा दी जा सके और वे अच्छी प्रजा बन सके । इसके लिये व्यक्ति को स्वयं पर नियंत्रण रखना, अपने मनोविकारों का दमन करना,

अपनी आत्मा के साथ सामंजस्य करना सीखना चाहिए। उसके मन में अपने बड़ों, शिक्षकों और राष्ट्र के लिए सम्मान होना चाहिए। इसी कारण यह धारण बनी कि पाइथागोरियन मात्र एक राजनैतिक समुदाय था। लेकिन पाइथागोरियन अनिवार्य रूप से राजनैतिक नहीं बल्कि धार्मिक या नैतिक थे। उनकी शिक्षा का मुख्य अभिप्राय उन धार्मिक-सन्यासी विचारों से था जो शुद्ध और शुद्धता पर आधारित थे।

आत्म-विचार

पाइथागोरसवादियों ने मानव-आत्मा को प्राण-आत्मा के उस रूप में देखा, जो व्यक्ति के पहले शरीर की मृत्यु के बाद भी रहती है और फिर दूसरे मानव या जंतु शरीर में प्रवास करती है। आत्माओं के पुर्नजन्म या देहांतरण का यह सिद्धान्त नैतिक रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह आगामी पुर्नजन्मों में अच्छे कार्यों के लिए पुरूस्कार और बुरे कर्मों के लिए सजा का प्रावधान करता है। उन्होंने आत्मा के मृदुकरण के लिए मौन, संगीत और गणित की शिक्षा दी। हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते हैं कि ये सभी शिक्षाएं पाइथागोरस की है अथवा उसके अनुयायियों द्वारा दी गई हैं। डायोजीन्स, लेशियस, जीनोफेन्स की उस कविता के बारे में बताते हैं जिसमें पाइथागोरस ने किसी व्यक्ति को कुत्ते को मारता हुआ देखकर उसे कुत्ते को मारना बंद करने के लिए कहा, क्योंकि उन्हें उस कुत्ते की चीत्कार में किसी मित्र की आवाज का अनुभव हुआ था। यह पुनर्जन्म की शिक्षा को मजबूती से प्रस्तुत करता है। अतः उन्होंने शरीर को नहीं बल्कि आत्मा को महत्व दिया। इसीलिए उन्होंने अपने जीवन में आत्मा के शुद्धीकरण और आत्मा के प्रशिक्षण पर जोर दिया। यह कहा जाता है कि ऐसा उनके ओरफियसवाद (orphicism) से प्रभावित होने के कारण था, जो कि वस्तुतः दर्शन की अपेक्षा एक धर्म था और उसका झुकाव सर्वेश्वरवाद की ओर था। यह मात्र विश्वविज्ञान का कोई पूर्वानुमान न होकर एक जीवनपद्धति भी थी। इस अर्थ में पाइथागोरस के अनुनायियों ने ऑफियसवाद से कुछ बातों को ग्रहण अवश्य किया था।

विपरीतों का सिद्धान्त

पाइथागोरस के अनुयायियों ने विपरीतों का सिद्धान्त भी विकसित किया जिसमें 'ससीम' और 'असीम' मुख्य जोड़ा था। उन्होंने 'ससीम' को किसी वस्तु के निश्चित और मापनीय गुण के रूप में समझा तथा 'असीम उसे समझा जो पाइथागोरस के अनुसार परिभाषा और मापन के प्रयासों के विरूद्ध था। 'असीम' का उनका मानक ज्यामितीय उदाहरण, किसी आयत का विकर्ण, था। इसके अनुसार महज पार्श्व भागों के संदर्भ में विकर्ण की लंबाई को व्यक्त करना असंभव है।

नैतिक सिद्धान्त

नैतिक समस्याओं को समझने के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण प्रस्थान बिन्दु यह है कि 'शुभ' को उचित और बुद्धिमत्तापूर्ण । अतः, चौथी शताब्दी ई.पू. में, एक बाद के पाइथागोरियन टारेन्टम के आर्कीटस ने सबसे पहले यह प्रतिपादित किया कि 'उचित तर्क' अच्छे व्यवहार की कुंजी है। उन्होंने गह भी कहा कि "सही समझ का पता चल जाने पर यह नागरिक संघर्ष को रोक देता है और मेलमिलाप को बढ़ा देता है... (यह) एक मानक है जो गलत करने वालो को रोकता है।" वास्तव में नैतिक निर्णय के रूप में उचित तर्क (रेक्टा राशा) का अरस्तुवादी और मध्ययुगीन सिद्धान्त पाईथागोरियन बौद्धिकता का प्रत्यक्ष रूप से ऋणी पाइथागोरसवादी दार्शनिक है। प्राचीन यूनान में तर्क पूर्ण (लोगोस) जीवन का अत्यधिक सम्मान किया जाता था। अरस्तू के नीतिशास्त्र की रचना मानव-आत्मा की बुद्धिमता के महत्व से ही की गई है। पाइथागोरस के 'शुभ' की अवधारणा के कारण ही होमर के 'शुभ' का, इसके सभी गुणों के साथ, बौद्धिकीकरण किया गया और उसे दर्शन के स्तर पर स्थापित किया गया।

संख्या की अवधारणा

अरस्तू अपने लेखन 'मेटाफिजिक्स' में पाइथागोरस के अनुयायीयों को गणित के प्रति समर्पित बताते हैं। वे पहले लोग थे जिन्होंने इस अध्ययन की शुरूआत की। पाइथागोरस की सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा यह है कि सभी वस्तुओं का मूल तत्व संख्या है। संख्या सभी वस्तुओं का आधार है और ब्रहमांड का सिद्धान्त है। उन्होंने ब्रहमांड को संख्याओं की अवधारणा से समझाया। सभी वस्तुएँ गणनीय हैं और हम अनेक वस्तुओं को सांख्यिकीय रूप से व्यक्त कर सकते हैं। इसलिए दो संबन्धित वस्तुओं के बीच संबन्ध को गणनीय अनुपात के अनुसार प्रदर्शित किया जा सकता

है। जिस प्रकार संगीत के सुर संख्या पर निर्भर है, उसी प्रकार ब्रहमांड का सामंजस्य संख्या पर निर्भर है। विश्व सिर्फ व्यवस्था, सौंदर्य और तंत्र नहीं, बल्कि बुद्धिमत्तापर्ण और बहु अनुपातों या संख्याओं का संबन्ध है। फिलोलॉस ने इसे निम्न शब्दों में सही तरीके से व्यक्त किया है: "प्रत्येक ज्ञात वस्तु के मूल में संख्या है और इसके (संख्या के) बिना कुछ भी सोचा या ज्ञात नहीं किया जा सकता है.... असत्य कभी भी संख्या तक नहीं पहुच सकता है, क्योंकि संख्या की प्रकृति असत्यता की विरोधी है, जबकि सत्य संख्या के साथ उपयुक्त और स्वभाविक रूप से मेल खाता है। प्रेम, मित्रता, न्याय, गुण, स्वास्थय आदि संख्याओं पर चित्रित है। प्रेम और मित्रता की गणना आठ की संख्या से की जाती है, क्योंकि इनमें समन्वय है और अष्टक में भी समन्वय है।"

पाइथागोरस ने संख्याओं को देशीय (Spatially) रूप में माना है। बिन्दु एक संख्या को, रेखा दो को, सतह तीन को तथा ठोस चार संख्या को प्रदर्शित करता है। अब यह कहना कि 'सभी चीजें संख्याएं हैं', का अर्थ होगा कि अंतरिक्ष में सभी पिंड बिंदु या इकाई है, जो एक साथ मिलकर संख्या बनाते हैं। अतः बिंदु, रेखाएं और सतह वास्तविक इकाईयां है जो प्रकृति के समस्त तात्विक पिंडो को बनाती है और इस अर्थ में सभी तात्विक पिंडों को संख्या समझना चाहिए। उनका मानना था कि वस्तुएं संख्या की प्रतियां या नकल है। ब्रहमांड की पूरी परिघटना को संख्याओं के तहत् अभिव्यक्त किया जा सकता है।

हेराक्लाइटस (536-470 ई.पू.)

हेराक्लाइटस का जन्म ईफेसस में हुआ था, वे एक संभ्रात परिवार के पुत्र थे और 504-501 ई.पू. के आसपास पैदा हुए थे। उन्होंने प्रजातन्त्र का सदैव पूरजोर ढ़ग से विरोध किया। उनके लेखन के लगभग सौ अंश मौजूद हैं। इनमें अधिकतर ब्रहमाण्ड एवं आत्मा से सम्बंधित सूक्तियां और पहेलियां हैं।

निरंतर प्रवाह

हेरक्लाइटस को उनकी इस ब्रहमांडीय दर्शन की उक्ति के लिए जाना जाता है कि सभी चीजें निरंतर गतिशील या परिवर्तनीय हैं। यह प्रकृति का सबसे मौलिक सिद्धान्त है। उन्होंने प्रकृति की अनुभूति को महत्व दिया। उन्होंने कहा कि नदी के समान प्रत्येक वस्तु प्रवामान है। वह कहते है कि "कोई भी व्यक्ति एक ही नदी में दो बार प्रवेश नहीं कर सकता हैं,

और न ही कोई व्यक्ति समान अवस्था में समान नश्वर पदार्थ को दो बार स्पर्श कर सकता हैं"। जब कोई व्यक्ति नदी में दूसरी बार उतरता है, तो न तो वह व्यक्ति स्वयं और न ही नदी समान होती है। व्यक्ति पहले ही परिवर्तित हो चुका होता है, क्योंकि व्यक्ति के शरीर की कोशिकाएं नई बनी होती है। व्यक्ति पहले से ही सम्भवन की प्रक्रिया में होता है और नदी में जल निरंतर प्रवाहित होता रहता है, क्योंकि प्रवाहीत जल ही नदी को नदी बनाता है। अतः जहां व्यक्ति उसमें प्रवेश करता है वह उसी क्षण बदल जाती है। चूंकि उनकी संपूर्ण दार्शनिक अवधारणा सत् के परिवर्तन के बोध से शासित है, इसलिए उन्हें "क्राईंग फिलोसोफर' के रूप में भी जाना जाता है।

अग्नि और सार्वभौमिक परिवर्तन

हेराक्लाइटस के अनुसार जगत का सबसे गतिशील पदार्थ अग्नि है। अग्नि सतत् चलायमान है। यह कभी विश्राम नहीं करती है। उन्होंने इसे वाष्प या प्राण नाम दिया। प्राण जीव का मुख्य जैविक घटक और आत्मा का सार है। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह अग्नि एक निरंतर क्रिया या प्रक्रिया के लिए सिर्फ एक मूर्त भौतिक प्रतीक मात्र है। यह स्वयं में कोई पदार्थ नहीं है, बल्कि यह स्वयं सभी पदार्थों को खंडित करती है। यह उस सिद्धान्त को इंगित करता है कि परिवर्तन या रूपान्त्रण निरंतर होते रहते हैं केवल अग्नि ही इन स्थितियों को संतुष्ट कर सकती है। इसमें ऊपर की ओर का परिवर्तन नीचे की ओर के परिवर्तन के समान होता है। अग्नि पहले जल में फिर पृथ्वी में परिवर्तित होती है। पृथ्वी, पुनः जल और अग्नि में बदल जाती है। सभी वस्तुओं की अग्नि से और अग्नि की सभी अन्य वस्तुओं से अदला बदली होती है। जिन वस्तुओं के बारे में हम सोचते हैं कि वे स्थायी हैं, स्थायी नहीं हैं। हम जो नहीं देख पाते हैं वह है, उनमें होने वाली गति। वह कहते हैं कि "जो ठंडा है वह गर्म हो जाता है, जो गर्म है वह ठंडा हो जाता है, गीला सूख जाता है और सूखा गीला हो जाता है"। "जगत का यह क्रम सभी के लिए समान नहीं है, लेकिन यह सदैव

विद्यमान था और अनन्त काल तक सजीव-अग्नि के रूप में विद्यमान रहेगा। वह अग्नि जो समय पर प्रज्वलित हो जाती है और समय से बुझ जाती है"। जगत् एक सतत् चलायमान अग्नि है।

विपरीतों का संगठन

विश्व विपरीतों से बना है। विपरीतों की उपस्थिति विश्व को वैसा बनाती है, जैसा वह है। शुभ और अशुभ की अवधारणा का जगत् के क्रम में अपना स्थान है। यदि युद्ध नहीं होगा, तो हम शांति कैसे अर्जित करेंगे? युद्ध में शांति होती है। निर्माण विध्वंस के लिए होता है। जन्म मृत्यु के लिए होता है। निर्बल स्वास्थ्य की आवश्यकता की मांग करता है। यदि गर्मियां न होती, तो मानसून की क्या उपयोगिता होती?

हेराक्लाइटस की शिक्षा की नवीनता विविधता में एकता और एकता में भिन्नता की अवधारणा में है। वह 'एक' (सत्) की उपस्थिति के लिए विपरीतों को अनिवार्य मानते हैं। तथ्य यह है कि 'एक' सिर्फ विपरीतों की उपथिति में होता है। यह विपरीत की उपस्थिति 'एक' की एकता के लिए अनिवार्य है। हिराक्लाइटस के लिए सत् एक है; लेकिन साथ ही यह अनेक भी है। ऐसा संयोगवश नहीं, बल्कि अनिवार्य रूप से है। यह सत् का अनिवार्य गुण है कि इसे एक ही समय पर एक और अनेक होना चाहिए। हिराक्लाइटस की शिक्षा अनेक में विधमान 'एक' (सत्) के अधिक समीप है। इसकी पहचान भिन्नता में है। उन्होंने स्वीकार किया कि सभी चीजें एक हैं और एकता सिर्फ विपरीतों के संघर्ष से ही फलीभूत हाती है।

विपरीतों को 'एक' में संगठित करने का एक सिद्धान्त है। ब्रहमांड का अद्वैतवादी सिद्धान्त लोगोस के नाम से जाना जाता है, जिसका अर्थ है तर्क बुद्धि । हेराक्लाइटस की तर्क बुद्धि 'सार्वभौमिक तर्क बुद्धि है। यह ब्रहमाण्ड में पाई जाने वाली सभी वस्तुओं का मार्गदर्शन करती है। सतत जटिल परिवर्तनों में यह 'सार्वभौमिक तर्क बुद्धि' ब्रहमांड में एकता स्थापना । का कार्य करती है। किसी एक का सृजन दूसरे का विध्वसं है और पुनः किसी वस्तु का विध्वंस किसी और के सृजन की शुरूआत है। प्रत्येक वस्तु अपने विपरीत में परिवर्तित होती रहती है। इस जगत् में कुछ भी अपने गुणों में स्थायी नहीं रहता है। प्रत्येक वस्तु है और नहीं भी है। इसलिए प्रत्येक वस्तु स्वयं में विपरीतों को जोड़े रखती है। उदाहरण के लिए, संगीत में मेल ऊंचे और नीचे सुरों के समन्वय से होता है, जिसका अर्थ होता है विपरीतों का योग। इसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् विपरीतों का संयोजन है। "युद्ध सबका जनक और सबका राजा है"; क्योंकि, शांति में युद्ध समाहित है। यदि हम लड़ेंगे नहीं तो हमें शांति नहीं मिलेगी। इसलिए शांति युद्ध में शामिल है और युद्ध से शांति आती है।

नैतिक सिद्धान्त

हेराक्लाइटस के द्वारा लिखे हुए अंशों से ज्ञात होता हैं कि प्रक्रिया या 'सम्भवन' में एक सतत् रूप से पाया जाने वाला बौद्धिक आदर्श (लोगोस) है। हेराक्लाइटस के अनुसारः "नैतिक होने का अर्थ ऐसा बौद्धिक जीवन जीना है तर्क की आज्ञा का पालन करना है जो हम सभी के लिए समान है, पूरे जगत् के लिए समान है।" मनुष्य ने स्वयं को अपनी इन्द्रियों के सुपुर्द कर दिया है और वह ऐसे जीता है मानो वह अपस्मारी (मिर्गी) से ग्रसित है। विपरीतों, जैसे प्रेम और घृणा, के बीच संघर्ष का समाधान मापन प्रक्रिया (मेट्रोन) के अनुसार करना चाहिए। हेराक्लाइटस पर अनुसंधान दर्शाते हैं कि उनके नैतिक मत उनकी दार्शनिक शिक्षा में प्राथमिक महत्व रखते हैं। नैतिकता का अर्थ कानून के लिए सम्मान, आत्म-अनुशासन, मनोभावों पर नियंत्रण रखना है और नैतिक होने का अर्थ स्वयं को बौद्धिक सिद्धान्तों से नियंत्रित करना है। उनके लेखन से निम्नलिखित उद्धरण उनके नैतिकता सम्बंधि उच्च आदर्शवाद को प्रदर्शित करते हैं "चरित्र मनुष्य का दिव्य रक्षक है"; "मनोभावों को जीतना कठिन है, क्योंकि व्यक्ति जो भी (अनैतिक) प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसे आत्मा की कीमत पर प्राप्त करता है"; "मेरे लिए एक (चरित्रवान) व्यक्ति दस हजार (चरित्रहीनों) से बेहतर है, यदि वह श्रेष्ठ है"। यदि हम मनुष्य के मन में झांकते हैं, तो उसकी नैतिक स्थिति अच्छी नहीं पाते है। यहां हमारी शुभ की अवधारणा की समृद्धि में एक और तत्व जुड़ गया है। क्या अरस्तू अपने सद्गुण के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तियों के चरित्र निर्धारण की प्रक्रिया में हेराक्लाइटस के इस सिद्धांत से अत्यधिक प्रभावित नहीं जान पड़ते? अरस्तू, कहते हैं कि अच्छे कार्य अच्छे नैतिक चरित्र की स्थायी अवस्था से स्फुटित होते हैं। "अनेक (चरित्रहीनों) का कोई महत्व नहीं होता है, सिर्फ कुछ (चरित्रवान) ही मूल्यवान होते हैं"। हेराक्लाइटस

सत्य की प्राप्ति में इन्द्रिय ज्ञान के महत्व को नहीं स्वीकारते हैं। उनकी नैतिक अवधारणा बाह्य से आन्तरिक और आंतरिक से दैवीय के क्रम में स्फूटित होती है। "इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप कितनी यात्रा (खोज) करते हैं। भले ही आप प्रत्येक सड़क (राह) से गुजर ले (अर्थात सभी सम्भव ढ़गों और योग्यताओं से अन्वेषण कर ले) आप कभी भी आत्मा की सीमाओं को नहीं छू सकते हैं, क्योंकि इसमे प्रबल लोगोस पाया जाता है"।

हेराक्लाइटस के अनुसार मनुष्य को बौद्धिक गुणों से युक्त होना चाहिए। उसे तात्कालिक मूर्त आंकड़ों से स्वयं को विमुख करके उनमें उपस्थित सार भूत एकता को प्राप्त करना चाहिए। इस एकता के स्तर पर व्यवहारिक अनुभव सिद्धांतों में समाहित हो जाते हैं। हेराक्लाइटस की यह संवृत्तिवादी दृष्टि व्यक्ति को स्वयं के अन्वेषण की ओर लेकर जाती है। वह वास्तव में सत्य अन्वेषी थे। इसके माध्यम से वे बौद्धिक चरित्र (व्यक्ति) में बौद्धिक प्रज्ञा को प्राप्त करने में सफल हुए।

लोगोस की अवधारणा

हेराक्लाइटस के लिए शब्द लोगोस का एक निश्चित दार्शनिक अर्थ है। लोगोस का दार्शनिक महत्व ब्रहमांड को एकीकृत करने के उसके मूल्य में निहित है। लोगोस विरोधों को समन्वय के रूप में अथवा 'विरोधों के सहअस्तित्व" या संतुलन के रूप में ले आता है। हेराक्लाइटस के सूत्रों में अवस्थित विभिन्नता व्याख्याओं की विभिन्नता को भी इंगित करती है। इन विभिन्नताओं को मूलतः समूहों में बांटा जा सकता है। वस्तुतः लोगोस विरोधों से खाली नहीं है, बल्कि उनका अंतर्भूत नियम है। इस सम्बंध में गूथरी ने कहा है कि विरोधों के समन्वय में तीन अभिकथन होते हैं। ये हैं : 1) प्रत्येक वस्तु विरोधों से परिपूर्ण है; 2) विरोधों में समरूपता होती हैं 3) संघर्ष उनका रचनात्मक बल और प्रधान निदेशक होता है।

निष्कर्ष के रूप में हेराक्लाइटस की शिक्षा त्रिगुणात्मक है; भाषाई, गूढविज्ञानी, और तात्विक। लोगोस स्वयं को प्रदर्शित करता है। यह स्वयं सोचता है और यह अस्तित्वमान है। यद्यपि ईश्वर, अग्नि और लोगोस को त्रिएक के रूप में देखना उचित नहीं है। हेराक्लाइटस प्रबुद्ध ईश्वर के रूप में एकत्व को प्रमुखता देते हैं। ईश्वर विश्वव्यापी बुद्धि है। यह एक सर्व कानून है, जो सभी वस्तुओं में सर्वव्यापी है और सभी वस्तुओं को एकता में बांधकर सार्वभौमिक नियम के अनुसार सतत् परिवर्तन का निर्धारण करता है। व्यक्तिक बुद्धि इस विश्वव्यापी बुद्धि में क्षणिक तत्व है। इसलिए, मनुष्य को अपरिवर्तनीय नियम की सत्ता के अनुसार जीने के लिए संघर्ष करना पड़ता हैं। मनुष्य की बुद्धि और चेतना, जो अग्निमय तत्व हैं, मूल्यवान तत्व हैं। शुद्ध अग्नि के बिना शरीर मूल्यहीन है।

पार्मेनाइड्स (540-480 ई.पू.)

पार्मेनाइड्स यूनानी दर्शन के एलियाई परम्परा के दार्शनिक थे। उन्होंने ही 'सम्भवन' (गति) की अवधारणा के विरोध में 'सत्' (स्थिति) की अवधारणा को विकसित किया।

'सत्' की अवधारणा

पार्मेनाइड्स ने हेरेक्लीटस के सम्भवन (गति) के विरोध में 'सत्' की अवधारणा को विकसित किया। प्रश्न है; सत् क्या है? पार्मेनाइड्स के अनुसार सत् अविनाशक, पूर्ण और ज्ञेय है। उन्होंने 'सत्' को भौतिक माना। उनका सोचना था कि 'सत्' सीमित है, क्योंकि वह एक है। 'सत्' अन्नत भी है, अर्थात इसका न तो उद्गम है और न ही अंत, लेकिन यह देशीय रूप में सीमित है। वे पाइथागोरस के अमूर्त सार की अवधारणा के विषय में विभिन्न मत रखते थे। पाइथागोरस के लिए सत् ज्यामितीय इकाईयां है और प्रत्येक वस्तु को इन इकाईयों जैसे बिंदु, रेखा, त्रिकोण, वृत्त, घन आदि, जो की अमूर्त हैं, के रूप में समझा ज सकता है। पाइथागोरस का कहना है कि 'अस्तित्व' की सुरक्षा की जानी चाहिए; 'अस्तित्व को तार्किक घटकों में प्राप्त नहीं किया जा सकता है। 'अस्तित्व' विचार से पहले है। गणित और ज्यामिति से पहले 'सत्' का दर्शन या तत्वमीमांसा का अस्तित्व होता है जिस पर विचार निर्भर करता है, न कि विचार पर अस्तित्व निर्भर करता है।

'सत्' की व्याख्या

यह अविनाशी, सीमित, पूर्ण सत् क्या है; "सत्' के संदर्भ में छह व्याख्याएं हैं :

(1) रहस्यवादी व्याख्याः प्लोटीनस ने पार्मेनाइड्स के 'सत्' की व्याख्या को जीनोफेन्स के यूनम अर्थात ईश्वर के रूप में माना।

(2) प्रत्ययवादी व्याख्या : यह व्याख्या हेगेल और स्टेन्जेल द्वारा प्रस्तुत की गई है। पार्मेनाइड्स के अनुसार सत् विचार से उत्पन्न हुआ है और सोचने का अर्थ है - होना।

(3) भौतिकवादी व्याख्या : सत् भौतिक पिंडों का योग है।

(4) तार्किक व्याख्याः सत् तर्कवाक्य का संयोजन (Copula) है। कोई भी 'सत्' विधेय से पहले नहीं आता, अर्थात व्याकरण और तर्क से पहले नहीं आता है।

(5) प्लेटोवादी – अरस्तूवादी या निरपेक्ष व्याख्या : सत् एक परात्पर अवधारणा है, जिसके विभिन्न अर्थ है : पदार्थ, गुण, परिमाण, स्थान आदि । ये 'सत' के विभिन्न प्रकार है। 'सत्' एक संप्रत्यय है, जिसे अनेक प्रकारों से व्यक्त किया जाता है।

(6) अस्तित्ववादी या तात्विक व्याख्या : 'सत्' जगत् में अस्तित्व का मूल और प्राथमिक रूप है।

डारियो कंपोस्टा के अनुसार अनेक कारणों से पहली चार और छठवीं व्याख्या को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यह 'सत्' ईश्वर नहीं हो सकता, क्योंकि इसे पार्मेनाइड्स के लेखों में कभी भी ईश्वर नहीं कहा गया है, क्योंकि ऐसा होने पर पार्मेनाइड्स एक शुद्ध एकात्मवादी माने जायेंगे। प्रत्यवादी व्याख्या यूनानियों की चिन्तन परम्परा से मेल नहीं खाती, क्योंकि वे दार्शनिक रूप से यथार्थवादी थे। भौतिकवादी सिद्धान्त भी स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि यहां 'सत्' आयोनी दार्शनिकों का आर्क नहीं है। तार्किक व्याख्या को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह (पार्मेनाइड्स) तार्किक निर्णय से सत् को खोजने का काम नहीं कर रहे थे।

अपरिवर्तन का सिद्धान्त

परर्मेनाइड्स के अनुसार, यह कैसे संभव है की कोई चीज है भी और नहीं भी। किस प्रकार कोई एक वस्तु दूसरी में परिवर्तित हो सकती है? किस प्रकार एक गुण दूसरा गुण बन सकता है? यदि ऐसा सम्भव हो सकता है, तो हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि कोई वस्तु है और नहीं भी है। साथ ही इसका अर्थ यह भी है कि कोई वस्तु शून्य में से आ सकती है और स्वयं शून्य भी बन सकती है। पार्मेनाइड्स कहते हैं; "यह कभी सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि वस्तुएँ जो नहीं हैं, वो हैं।" तथापि अ-परिवर्तन के सिद्धान्त की तार्किक परिणाली यही है। जिन वस्तुओं का कोई अस्तित्व नहीं है, वे शून्य हैं। शून्य का अर्थ है- 'असत्' । यदि उनका अस्तित्व नहीं है, तो हम यह कैसे सिद्ध कर सकते हैं कि वे हैं? इसका उत्तर नहीं में है और यह असंभवता है। असंभवता सदैव असंभवता रहती है, यह कभी भी संभवता नहीं बन सकती।

अविनाशिता का सिद्धान्त

सत् अस्तित्वमान न हो यह तार्किक असम्भवता है अथवा जैसा कि लेख में कहा गया है "उस (सत्) के लिए न होना संभव नहीं है" (फ्रेगमेन्ट 11)। अरस्तूवादी अव्यघातता का सिद्धान्त कहता है कि यदि 'सत्' है (जो नहीं भी हो सकता है); तो वह आवश्यक रूप से है। पार्मेनाइड्स के अनुसार अविनाशिता के सिद्धान्त के आधार पर 'सत्' आवश्यक रूप से अस्तित्वमान है। इसलिए पार्मेनाइडस ने 'सत' की अ-परिवर्तनीयता पर बल दिया है। जहां तक उन्होंने 'सत्' (होने) को भौतिक रूप में माना है, उन्होंने तत्व की अविनाशिता पर जोर दिया है। अतः पार्मेनाइड्स ने कहा कि 'सत्' की न तो उत्पति होती है और न ही अंत होता है तथा यही तत्व की अविनाशिता है। 'सत्' स्वयं में पूर्ण सत् है, जिसमें कुछ जोड़ा नहीं जा सकता है। यदि यह विभाज्य है तो इसे किसी और से विभाजित होना पड़ेगा। परन्तु सत् के अतिरिक्त कोई दूसरा विद्यमान नहीं हो सकता है। इसका अर्थ है कि 'सत्' के अतिरिक्त और कुछ

नहीं है। इसमें कुछ भी जोड़ा नहीं जा सकता है, क्योंकि इसमें जो कुछ भी जोड़ा जायेगा, वह भी 'सत्' ही होगा। इस प्रकार सम्भवन अर्थात परिवर्तन का निषेध हो जाता है।

सत् और असत् (भाव और अभाव)

अभिव्यक्ति का दूसरा तरीका यह है कि यदि सत् सम्भवन है, तो वह या तो 'सत्' से या 'असत्' से आया है। यदि 'असत्' से, तो यह शून्य से आया है जो कि असंभव है, क्योंकि भाव के अतिरिक्त अ-भाव की सत्ता सम्भव नहीं है। मेटाफिजिक्स में अरस्तू ने इस पर टिप्पणी की है कि पार्मेनाइड्स के अनुसार सत् को अनिवार्यतः एक ही होना पड़ेगा ताकि उसके अतिरिक्त वह कुछ ओर न हो। इस मामले पर अरस्तू ने स्पष्ट रूप से अपने कार्य फिजिक्स (184 बी, 16; 185ए 9; 185बी 18; 186ए; 186ए 22) में तर्क किया है कि यदि यह (अभाव) भाव से उत्पन्न है तो यह स्वयं से ही आया है। यह ऐसा कहने जैसा है कि यह स्वयं के समान है और इसलिए यह सदा से उपस्थित रहा है। पार्मेनाइड्स ने इससे निष्कर्ष निकाला कि "सभी अस्तित्वमान वस्तुएँ एक है और यह (एक) 'सत्' है", यह तादात्मयता का सिद्धान्त है। अत: केवल एक ही शाश्वत्, अ-व्युत्पन्न, अपरिवर्तनीय 'सत्' हो सकता है और इस सत को अनिवार्यतः सतत्, अवभाज्य और अपरिवर्तित होना चाहिए।

सत् और विचार

'सत्' और 'विचार' एक ही हैं, क्योंकि जो सोचा नहीं जा सकता है, वह अस्तित्वमान भी नहीं हो सकता है और जो नहीं हो सकता है अर्थात् 'असत्' है, उसे सोचा भी नही जा सकता है। अर्थात् 'विचार' और 'सत्' समान है। जो कुछ भी विचार योग्य है, उसमें 'सत्' है। पार्मेनाइड्स का संभवतः यह भी मानना था कि सत् और विचार उसी रूप में उपस्थित है जैसे कि सत् मन से संपन्न है। एक महत्वपूर्ण लेख यह दर्शाता है: कि "विचार और विचार का कार्य एक समान है, क्योंकि विचार 'सत्', जिसमें इसे अभिव्यक्त किया जाता है, के बिना नहीं मिल सकता। वास्तव में विचार सत् ही है और इसके परे कुछ नहीं है" (फ्रेगमेन्ट बी 8)।

सत् और भ्रम

सभी परिवर्तन अग्राहीय है और इसलिए इन्द्रिय जगत् एक भ्रम है। प्रत्यक्ष जगत को सत्य मानना असत् को सत् मानने जैसा है। पार्मेनाइड्स बुद्धि में दृढ़ विश्वास रखते हैं। उनका मानना है कि सत् से तात्पर्य तर्क का अनुसरण करना है और जो भी विचार का विरोधी है वह सत् नहीं हो सकता है। "उन्होंने यह दावा नहीं किया कि 'सत्' विचार है, बल्कि यह कहा कि सत् को विचार द्वारा ही समझा जा सकता है। यदि यह बुद्धिपरक सत् पार्मेनाइड्स के लिए ज्ञान है तो उनके शुभ की अवधारण भी बुद्धि आधारित ही सिद्ध होती है। यह निश्चित है कि कुछ न कुछ बौद्धिक तत्व निश्चित रूप से उनकी एगेथोस (शुभ) की अवधारणा को पूरा करता है और अरस्तू के नैतिक सद्गुण की अपेक्षा बौद्धिक गुण के नियंत्रण के बहुत निकट प्रतीत होता है।

एलिया के जीनो (490-430 ई.पू.)

जीनो पार्मेनाइड्स के शिष्य थे और एलिया शहर से आए थे। तथापि उनके पार्मेनाइड्स का शिष्य होने के बारे में मतभेद हैं। जीनो गणित और तर्कशास्त्र के विद्वान थे। उन्होंने अनेकत्व की निस्सारता को दर्शाया । वह अपनी तार्किकता के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। 'सत्' एक तथा अपरिवर्तनीय है। अनेकत्व और गति स्वयं में ही विरोधाभासी है। उन्होंने दोनों की सत्ता को नकार दिया। उनके तर्क स्पष्ट रूप से तर्कशास्त्र और अनुभव के बीच के अन्तर को बताते थे।

अनेकत्व के विरूद्ध तर्क

उन्होंने तर्क दिया कि यदि संपूर्ण 'सत्' अनेकत्व को प्रदर्शित करता है, तो यह अनेक बिंदुओं से मिलकर बना है और इस पूर्ण को अनंत रूप से लघु या अनन्त रूप से व्यापक दोनों रूपों में सिद्ध किया जा सकता है। कोई वस्तु छोटे भागों से निर्मित है और वही वस्तु बड़े भागों से भी बनी है। यह कहना बेतुका है कि एक पूर्ण वस्तु अनंत रूप से लघु और अनंत रूप से व्यापक दोनों है। उदाहरण के लिए हम एक रेखा को लेते हैं, जो अनेक बिंदुओं की बनी होती है, जिनमें से प्रत्येक का एक निश्चित माप होता है। तब रेखा अनिश्चित रूप से बड़ी होनी चाहिए, क्योंकि यह

अनन्त असंख्य इकाईयों की बनी है। इसलिए विश्व की प्रत्येक वस्तु व्यापक आकार की होनी चाहिए अथवा विश्व को अनन्तरूप से अत्यधिक विशाल होना चाहिए। दूसरी ओर, कल्पना कीजिए, यदि इकाईयों का परिमाण न हो तो पूरे ब्रहमांड का भी परिणाम नहीं होगा। चूंकि एकल इकाई का कोई परिमाण नहीं होता है। अतः पूरे योग का भी कोई परिमाण नहीं होगा। तब इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि ब्रहमांड अत्यन्त लघु है। अतः वह अनेकता की आरंभिक कल्पना को पूरी तरह से नकारते हैं।

जीनो के अनुसार, यदि हम यह मानते हैं कि 'सत्' अनेक है तो यह मान्यता बिल्कुल बेतुकी है। यदि विद्यमान सत् सांख्यिकीय रूप से परिभाषित है और यदि उनकी गिनती नहीं की जा सकती है, तब यह अस्तित्वमान कैसे हो सकते हैं? यदि उनकी गिनती करना संभव नहीं है, तो वे अनंत हैं। अब, उनकी गिनती नहीं की जा सकती क्योंकि दो सत् के बीच एक अन्य सत् होता है। तीसरे और पहले दो के बीच एक अन्य सत् पाया जाता है अर्थात इस प्रकार यह स्थिति अनंत काल तक चलती जाती है।

पाइथागोरस के देश (space) के सिद्धान्त के विरूद्ध उनकी एक विशेष आपत्ति है। पार्मेनाइड्स के अनुसार शून्यदेश का अस्तित्व नहीं है। जीनो ने इस मत का समर्थन किया और इसके विपरीत मत को विसंगत बताया। मान लीजिए कि शून्याकाश है और उसमें कुछ वस्तुए भी है। अब, यदि वह स्थान शून्य है तो उसमें वस्तुएं नहीं हो सकती हैं। यदि यह देश कुछ है, तो इस देश को दूसरे देश की आवश्यकता होगी और इस प्रकार अनंतता दोष होगा। यदि ऐसा कोई देश नहीं है तो वस्तुएं देश में नहीं होंगी, इसलिए वस्तुएं देश या शून्यदेश में नहीं होती हैं। ऐसी स्थिति में अनेकता भी सम्भव नहीं हो सकती है।

इसी प्रकार हम यह सोचते हैं कि पिंड देश से होकर गति करते हैं। किसी अन्य देश से गुजरने के लिए उसे उस देश का कम से कम आधा भाग तय करना होगा, आधे तक पहुंचने के लिए उसे आधे के आधे को पार करना होगा और इस प्रकार यह प्रक्रिया अनंत होगी। प्रश्न उठता है कि व्यक्ति किस प्रकार असंख्य बिंदुओं को और इस प्रकार अनंत दूरी को पार कर सकते हैं? इसलिए कोई भी किसी भी दूरी को पार नहीं कर पाएगा और गति असंभव होगी। इस तरीके से गति असंभव हो जाएगी।

यहाँ तक कि गति में होने पर भी गति नहीं होती है, क्योंकि गति में वस्तु को अपने विस्तार या परिमाण को अवश्य प्राप्त करना चाहिए। जीनो इस बात को तीर के उदाहरण से स्पष्ट करते है। वे तर्क करते हैं कि अपनी गति की प्रत्येक घटना में एक तीर अपने परिमाणों के बराबर स्थान ग्रहण करता है, जबकि इन परिमाणों की अपनी कोई गति नहीं होती है। चूंकि स्थान ग्रहण करने का अर्थ है कि वस्तु विश्राम की अवस्था में है इसलिए गतिशील–तीर वास्तव में स्थिर है। जब तीर अपने परिमाण में होता है, उस क्षण कुछ भी गतिमान नहीं होता है। अर्थात तीर पूर्णतः स्थिर रहता है। पार्मेनाइड्स का शिष्य होने के नाते जीनो ने ब्रहमांड में व्याप्त अनेकताओं का पुर जोर खंडन किया।

पार्मेनाइड्स के अनुसार, ब्रहमांड का परम सिद्धान्त स्थायित्व है। कोई अस्तित्वमान वस्तु किसी दूसरी वस्तु में परिवर्तित नहीं हो सकती है। यदि कोई ऐसा मानता है तो यह महज भ्रम है। पार्मेनाइड्स के लिए परिवर्तन असंभव है। उनका मानना था कि वह हर चीज जिसका हम अनुभव करते हैं, जिसका अस्तित्व है, वह सदा से ही विद्यमान रही है। कुछ भी स्वयं के अतिरिक्त और कुछ अन्य नहीं हो सकता है। यद्यपि वह निश्चित रूप से यह जानते थे कि मानव इंद्रियां परिवर्तन को अनुभव करती है और दूसरी ओर वह इस बात के लिए भी निश्चित थे कि उनकी बुद्धि इस परिवर्तन में भी स्थायित्व महसूस करती हैं। उन्होंने बुद्धिमता को अधिक महत्व दिया और अन्य सभी अनुभवों को एक भ्रम के रूप में नकार दिया। वह एक बुद्धिजीवी थे। वे यह मानते थे कि मानव तर्क जगत् के ज्ञान का हमारा प्राथमिक स्रोत है।

एम्पीडोकल्स (490-430 ई.पू.)

एम्पीडोकल्स इटली के समीप के एक द्वीप सिसली के रहने वाले थे। वह अपने शहर में डेमोक्रटिक पार्टी के नेता थे। उन्हें जादूगर और अन्य अद्भुत कार्यकर्ता के रूप में भी जाना जाता है। उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों हेराक्लिटस

और पार्मेनाइड्स की जटिल अवधारणाओं से बाहर आने में हमारी सहायता की है। उनका मानना था कि इन दार्शनिकों ने जगत् के मूल आधार को समझाने में एकतत्ववादी दृष्टिकोण पर अधिक जोर दिया।

विश्वोत्पत्ति (Cosmogeny)

एम्पीडोकल्स के अनुसार एक वस्तु दूसरे तत्व में परिवर्तित नहीं हो सकती है। वास्तव में

अग्नि परिवर्तित नहीं हो सकती है। वास्तविक अग्नि वास्तविक अग्नि के रूप में रहेगी और वह हमेशा अग्नि ही बनी रहेगी। इस विचार पर पार्मेनाइड्स का यह कहना सही था कि "कुछ भी परिवर्तित नहीं होता है । इसके विपरीत, एम्पीडोकल्स ने हेराक्लिटस की शिक्षा को भी स्वीकार किया कि इन्द्रियों से प्राप्त अनुभव भी सत्य है। हम प्रकृति में हुए परिवर्तनों को निरन्तर देखते हैं। इस प्रकार वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह समस्या एकतत्ववादी दृष्टिकोण का परिणाम है। परिणामस्वरूप, उहोंने सुझाया कि ब्रहमांड चार मूल तत्वों से मिलकर बना है: पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि । ब्रहमांड में समस्त गतियां इन चारों तत्वों के कारण हैं। ये चारों तत्व पास आते हैं और पृथक हो जाते हैं। ब्रहमांड इन तत्वों का मिश्रण है, लेकिन ब्रहमाण्ड में इन तत्वों का अनुपात भिन्न होता है। एम्पीडोकल्स ने इसकी तुलना चित्रकार के कार्य से की है। वह चार रंगों जैसे की सफेद, काले, लाल और पीले से विभिन्न चित्र बना सकता है। एक बुद्धिमान चित्रकार विभिन्न चित्र बनाता है। इसके लिए वह इन रंगों को उचित अनुपात एवं ढ़गों में मिश्रित करता है। वह कुछ को अधिक मात्रा में तो कुछ को कम मात्रा में मिलाकर उनसे खूबसूरत चित्र बनाता है। किसी चीज की मृत्यु या उसका विनाश तत्वों की एकता के पृथक्करण की वजह से होता है। तथापि ये तत्व सदैव बिना परिवर्तनों के रहते हैं चाहे हम अपनी आँखो से परिवर्तन होते हुए देख भले ही क्यों न रहे हो। इसलिए यह कहना सही नहीं है कि प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। वास्तव में, मूल तत्वों में कोई परिवर्तन नहीं होता है, बल्कि इन तत्वों का संयोजन और पृथक्करण होता है। इन परिवर्तनों और संयोजनों के दौरान सभी मूल तत्व बिना परिवर्तन के अपने गुण को बनाए रखते हैं।

एकता और पृथक्करण का सिद्धान्त

एम्पीडोकल्स ने देखा कि एक प्रश्न का अभी तक कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिल पाया है। वह प्रश्न है कि वह क्या है, जो वस्तुओं के संयोजन और विघटन करने को संभव बनाता है। इसके लिए एम्पीडोकल्स ने कहा कि प्रकति की प्रक्रिया में दो भिन्न बल कार्य करते हैं। ये दो बल प्रेम और घृणा (आकर्षण–प्रतिकर्षण) हैं। प्रेम एकता और जीवन लाता है, लेकिन घृणा विनाश और मृत्यु की वाहक है। ये सृष्टि निर्माण के दो संरचनात्मक बल हैं। न कुछ बनता है और न कुछ नष्ट होता है। सब कुछ शाश्वत् है। "ऐसा कुछ नहीं है, जिसके द्वारा कोई ऐसी वस्तु उत्पन्न होती हो, जो पहले से विद्यमान नहीं थी या फिर पहले से विद्यमान वस्तु नष्ट होती हो। बिना शाश्वत्ता के वस्तु निरर्थक है। वास्तव में 'सत्' सदैव विद्यमान रहता है, हम जब चाहे उसे देख सकते हैं। इसलिए जीवन और मृत्यु प्रेम और घृणा के अन्तिम लक्ष्य नहीं है, बल्कि ब्रहमांड के शाश्वत् चक्र के द्वारा संयोजन और वियोजन इनके मूल लक्ष्य है।

अनैक्सागोरस (500-428 ई.पू.)

अनैक्सागोरस का जन्म एशिया माइनर में क्लेजोमेनी में हुआ था। वे वहां से अपने घर परिवार के साथ एथेन्स आ गए और महान राजनेता पेरीकल्स के मित्र बन गए, जिनका लक्ष्य अपने शहर को हेल्लास का बौद्धिक और राजनीतिक केन्द्र बनाना था। अनैक्सागोरस का जीवनकाल 500-428 ई.पू. के बीच था।

अनैक्सागोरस ने एम्पीडोकल्स की भांति पार्मेनाइड्स की पद्धति को अपनाते हुए यह माना कि सत् स्थायी होता है। इसका अर्थ है कि सत् से न तो सत् निकलता है और न ही असत्, बल्कि यह अपरिवर्तित रहता है। परन्तु, अनैक्सागोरस एम्पीडोकल्स की इस दार्शनिक मान्यता से सहमत नहीं थे कि मूल तत्व अनेक हैं, जैसे पृथ्वी, वायु, अग्नि और जल। उनके अनुसार, प्रत्येक विभाज्य वस्तु, जो गुणात्मक रूप से पूर्ण के समान हैं; वह परम और अव्युत्पन्न है। उदाहरण के लिए, चांदी के एक टुकड़े को दो भागों में बाट दिया जाये तो दूसरे टुकड़े में भी पहले टुकड़े के गुण होंगे। यहां भाग भी पूर्ण के समान होगा। वे वस्तुएं, जिनके भाग किए जाने पर उनके गुण भी वही होते हैं जो पूर्ण के होते हैं, परम और अव्युत्पन्न होते हैं। ये वस्तुएं अनेक गुणात्मक रूप से भिन्न कणों का मिश्रण होती हैं।

अनैक्सागोरस के अनुसार कोई कण अकेला नहीं होता है बल्कि सभी प्रकार के कण एक साथ होते हैं और ये अविभाज्य होते हैं। लेकिन वास्तव में कुछ कण प्रभावी होते हैं एवं उन्हीं प्रभावी कणों के गुणों के आधार पर कोई वस्तु सोना और कोई चांदी बनती है। उन्होंने आगे कहा "प्रत्येक दूसरी वस्तु में प्रत्येक वस्तु का भाग होता है। इस प्रकार अनैक्सागोरस ने परिवर्तन और स्थायित्व की अवधारणा को समझाने का प्रयास किया। यदि हम उन्हें माने तो यह समझाना आसान है कि मांस वनस्पति से आ सकता है और वनस्पति मांस से। अर्थात एक प्रकृति की वस्तुओं से पूर्णरूप से भिन्न प्रकृति की कोई भी वस्तु उत्पन्न हो सकती है।

प्रयोजनवाद

प्रयोजनवाद का विचार सर्वप्रथम अनैक्सागोरस के दर्शन में देखने को मिलता है। उन्होंने बढ़ी कुशलता से इसका विश्व व्यवस्था की विशिष्टता ओर पूर्णता के साथ संबन्ध स्थापित किया। उन्होंने जगत् की समस्त जटिल प्रक्रिया, जैसी यह वर्तमान में दिखाई देती है, को अनिवार्य मूल परिवर्तन चक्र से उत्पन्न लम्बी परिवर्तनों की श्रृंखलाओं का परिणाम माना। आरंभिक गति के लिए उन्होंने एक बौद्धिक सिद्धान्त 'बुद्धि' (Nous) को कारक के रूप में प्रस्तुत किया। नाउस एक स्वायत्त सक्रिय सत् है, जो जगत् में समस्त गति और जीवन

का मुक्त स्रोत है। यह उन सभी पर शासन करता है, जिनमें जीवन है। यह नाउस या अनैक्सागोस का दर्शनशास्त्र को एक विशेष योगदान है। नाउस उन सभी छोटी और बड़ी चीजों पर नियंत्रण करता है, जिनमें जीवन है। यह समस्त चक्रण का नियंत्रण कर रहा है और इसने शुरूआत में ही परिक्रमा आरंभ कर दी थी। नाउस एक प्रयोजनवादी या उद्देश्यपरक सिद्धान्त है।

नैतिक सिद्धान्त

अनैक्सीगोरस की कोई औपचारिक नैतिक शिक्षाएं नहीं थी, लेकिन उन्होंने यूनानी दार्शनिक अध्ययनों में बुद्धि या नाउस की अवधारणा प्रस्तुत की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि "बुद्धि अनन्त और स्वचालित है और इसमें कुछ भी मिश्रित नहीं है, बल्कि यह स्वयंभू है।" अरस्तू ने अनैक्सागोरस की उनके विचारों की सौम्यता के लिए सराहना की, लेकिन ब्रहमांडीय घटनाओं को समझाने में संगत रूप से नाउस का उपयोग नहीं कर पाने के कारण उनकी आलोचना भी की। यह संभव है कि अनैक्सागोरस की नाउस की अवधारणा ने मानव आचरण के मानसिक पहलुओं की चर्चा करने में अरस्तू की सहायता की हो। कभी-कभी अनैक्सागोरस ने बुद्धि को सभी वस्तुओं में सबसे जटिल तथा रहस्मयी कहा है। इस प्रकार वह इसे एक प्रकार का तत्व घोषित करते प्रतीत होते हैं। नाउस को रचनात्मक तत्व के रूप में नहीं मानना चाहिए। परन्तु यह सर्वव्यापी और परात्पर है। नाउस सभी सजीवों में पाया जाता है। सजीवों के भौतिक शरीरों में अनिवार्य रूप से अन्तर होते हैं, लेकिन उनकी आत्माओं में कोई अन्तर नहीं होता। यद्यपि, अनैक्सागोरस ने मानव चेतना में स्वतंत्र स्वः होने को स्वीकार नहीं किया। उनके नाउस के सिद्धान्त को लेकर एक उलझन विद्यमान है कि यह ईश्वरवादी है या सर्वेश्वरवादी है। अरस्तू ने यह कहते हुए उनकी आलोचना की है कि अनैक्सागोरस केवल तब-तब 'नाउस' को लेकर आते हैं जब-जब वह सत् की यान्त्रिक व्याख्या करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं।

डेमोक्रीटस एवं ल्यूसीपस (परमाणुवादी)

मिलेटस के ल्यूसीपस और एबडेरा के डेमोक्रीटस परमाणुवादी मत के संस्थापक हैं। लेकिन अरस्तू और थियोफ्रेस्टस ने ल्यूसीपस को ही इस मत का मूल संस्थापक माना है। एबडेरा के डेमोक्रीटस का जन्म 460 ई.प. के आस पास ऐस के तट पर स्थित एबडेरा के व्यावसायिक शहर में हुआ था और 370 ई.पू. में उनकी मृत्यु हुई। उन्होंने बताया कि ब्रहमांड की रचना एक प्रकार के छोटे अदृश्य कणों से हुई है। शाश्वतता और अपरिवर्तनीयता इन कणों की विशेषताएं हैं। उन्होंने इन छोटी इकाईयों को 'परमाणु' अर्थात अ-विभाज्य कण नाम दिया।

परमाणु सिद्धान्त

परमाणुवादियों के लिए सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह थी कि प्रकृति के भौतिक तत्वों, जिनसे प्रकृति की रचना हुई है, को अनिश्चित रूप से अपेक्षाकृत छोटे कणों में नहीं बांटा जा सकता है। यदि ऐसा संभव हो जाए तो प्रकृति के स्थायी

गुणों को खतरा उत्पन्न हो जाएगा। तब प्रकृति में कोई स्थायित्व भी नहीं होगा। वे पार्मेनाइड्स की इस बात से सहमत थे कि "भाव से अभाव की उत्पत्ति नहीं होती' | अतः प्रकृति का भौतिक कण शाश्वत् एवं सत्य होना चाहिए। तब ही उसमें से प्रकृति की उत्पत्ति हो सकती है। ये शाश्वत् कण जो परमाणु है, दृढ़ और ठोस होते हैं, लेकिन ये एकसमान नहीं होते हैं। अन्यथा, प्रकृति की अनेकता और एकता असंभव हो जायेगी। जबकि हम पर्वतों, सागरों, आकाश, अमीबा, पक्षियों, मछली, फूलों, जंतु और मनुष्यों आदि विभिन्न जीवों एवं वस्तुओं को स्पष्ट रूप से देखते हैं। उन्होंने इसकी पुष्टि की कि ब्रहमांड विभिन्न प्रकार के असत्य असीमित परमाणुओं से निर्मित है। इनमें से कुछ गोल और चिकने, कुछ अनियमित और दांतेदार होते हैं। यथार्थरूप से अपनी अनंत बहुरूपता के कारण ये एक दूसरे से संयोजन करके असीमित पिंड बनाते हैं। जब पिंड (शरीर) विघटित होता या गल जाता है, तो परमाणु मुक्त हो जाते हैं और ये पिंडों के नए संयोजनों के लिए पुनः तैयार हो जाते हैं। परमाणु अंतरिक्ष में गति करते रहते हैं और अकस्मात रूप से एक दूसरे से उलझ जाते हैं तथा एक साथ मिलकर नई रचना करने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

परमाणुवादियों के अनुसार, सिर्फ परमाणु और शून्य ही विद्यमान है। ब्रहमांड की उनकी व्याख्या में 'आत्मा' और 'बल' की अधिक भूमिका नहीं है। 'आत्मा' मस्तिष्क से जुड़ी है। जब मस्तिष्क विघटित हो जाता है, तो चेतना भी गुम हो जाती है और तब विशेष प्रकार के चिकने गोल आकार के 'आत्मा के परमाणु' सभी दिशाओं में फैल जाते हैं। उनका मानना था कि परमाणु के अतिरिक्त और कुछ भी ब्रहमांड को प्रभावित नहीं कर सकता है। इन्हें कुछ अन्य नए पिंडों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसका अर्थ है कि मनुष्यों में शाश्वत आत्मा जैसा कुछ नहीं होता है। इसी कारण से उन्हें भौतिकवादी कहा जाता था, क्योंकि वह भौतिक वस्तओं को ही यर्थाथ मानते थे। प्रकति में सभी वस्तऐं काफी यांत्रिक रूप से होती हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि वस्तुएं बेतरतीब रूप से होती हैं। उनके अनुसार आवश्यकता के अपरिहार्य नियम होते हैं। एक प्राकृतिक कारक जो सभी में नैसर्गिक रूप से है, प्रकृति में घटनाओं के घटित होने का मार्गदर्शन करता है। अतः ब्रहमांड में सभी प्रक्रियाएं यान्त्रिक होते हुए भी प्राकृतिक है।

ज्ञान का सिद्धान्त

परमाणुवादी मत के अनुसार ज्ञान का सिद्धान्त इन्द्रियों के अनुभवों से प्राप्त ज्ञान से विकसित हुआ है। इन्द्रिय-ज्ञान निर्गम की क्रिया द्वारा अनुभूत पिंड के समान होता है। सभी पिंड वायु के द्वारा अपने बिंब को भेजते हैं। बिंब, जो शरीर द्वारा संचारित होता है, प्रभावित वस्तु को बहुत कुछ अपने समान रूपांतरित कर लेता है। अंत में, यह किसी मनुष्य या सजीव की इन्द्रियों तक पहुंच जाता है। यदि संचरण की प्रक्रिया में अन्य वस्तुओं से निकलने वाले बिंब, अन्य बिंबों के मार्ग में बाधा पहुंचाते हैं, तो भ्रम उत्पन्न होता है। यदि ये बिना किसी बाधा के आगे बढ़ते हैं, तो सत्यात्मक ज्ञान प्राप्त होता है। अर्थात यह सीधे संवेदन अंगों और अंततः आत्मा पर सीधा आघात करते हैं।

संवेदन के गुण (रंग, ध्वनि, स्वाद, गंध और स्पर्श) स्वयं वस्तुओं में नहीं होते हैं। यह महज हमारी इन्द्रियों पर परमाणुओं के संयोजन का प्रभाव है। परमाणुओं में मूल रूप से आकार ओर विस्तार के अतिरिक्त अन्य कोई गुण नहीं होते हैं। अतः इन्द्रियों से प्राप्त अनुभव वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान प्रदान नहीं करता है। यह केवल यह दर्शाता है कि वस्तुएं किस प्रकार मनुष्यों को प्रभावित करती हैं। यूनानी परमाणुवादियों ने पहले ही प्राथमिक गुणों (आकार, अभेद्यता, इत्यादि) और द्वितीयक गुणों (रंग, ध्वनि, गंध आदि) के बीच अन्तर कर दिया था। यह भेद आज भी आधुनिक दर्शन में मुख्य चर्चा का विषय है।

हम परमाणु के बारे में सिर्फ सोच ही सकते हैं। हम उन्हें उनके वास्तविक रूप में नहीं देख सकते हैं। इन्द्रिय-ज्ञान से हमें स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। विचार, जो हमारे इन्द्रिय प्रत्यक्षों और प्रतीतियों को बेधकर परमाणु तक पहुंचता है, ही सही ज्ञान है। डेमोक्रीटस एक बुद्धवादी दार्शनिक थे। बुद्धिपरक विचार की शुरूआत वहां से होती है, जहां इन्द्रिज्ञान समाप्त होता है। यह जानने का विशुद्ध तरीका है। तर्क आत्मा का उच्चतम कार्य है। डेमोक्रीटस के लिए आत्मा और तर्क एक समान है।

नैतिक सिद्धान्त

डेमोक्रीटस आत्मा को मानव कल्याण का केन्द्रबिंदु मानते थे। उनके आत्मप्रसाद (eudaimonia) के सिद्धान्त में 'अच्छे अस्तित्व' (eu-esto) और 'अच्छी' भावना' (eu-thumise) की धारणा दोनों सम्मिलित थी। पेस गोसलिंग और

टेलर का मानना है कि डेमोक्रीटस व्यवस्थित रूप में नैतिक सिद्धान्त को प्रस्तुत करने वाले पहले यूनानी दार्शनिक थे। डेमोक्रीटस के नैतिक सिद्धान्त में क्रम-व्यवस्थापन की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण चरण, इस व्यर्थ नैतिक सोच में बदलाव था कि प्रत्येक व्यक्ति खुश, प्रसन्न और समस्याओं से मुक्त रहना चाहता है। नीतिशास्त्र पर डनोकीटस के लेखनों की सूची में एक निबन्ध पेरी यूथाइमियास (Peri euthymias) मिला है जिसके सिर्फ एक या दो वाक्य ही बचे हैं। बाद के डोक्सोग्राफर्स (ईश्वर का महिमामंडन करने वाले) ने सुखशांतिवादी सिद्धान्तों (eudaimonistic theories) की रूपरेखा की कल्पना करके हमें बताया है कि डेमोक्रीटस ने सुख-शान्ति (eythymia) को जीवन का लक्ष्य माना है।

डेमोक्रीटस नैतिक जीवन में तर्क की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। मानव के समस्त आचरण का अंत समाज का और अंततः मनुष्य का कल्याण है। कल्याण का अर्थ सिर्फ बौद्धिक सन्तुष्टि नहीं, बल्कि इंद्रियों का सुख भी हैं। हम डेमोक्रीटस की शिक्षाओं में सुखवाद के बाजों को देख सकते हैं। वास्तविक प्रसन्नता मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य है। यह संतुष्टि या सुख की भीतरी अवस्था है, जो आत्मा की शांति, मेल और निर्भयता पर निर्भर करती है। यह प्रसन्नता, संपत्ति या भौतिक वस्तुओं से नहीं आती है और न ही शरीर के सुखों से मिलती है। इसके लिए थोड़ा कष्ट उठाना पड़ता है और इसके लिए आनंद की पुनरावृत्ति और संयम की आवश्यकता होती है। अपकी इच्छाएं जितनी कम होगी आपको उतनी ही कम निराशा होगी। सभी सद्गुण तभी मूल्यवान है, यदि ये प्रसन्नता पैदा करने में सहायक हैं। शत्रुता, ईर्ष्या और मन की कड़वाहट वैमनस्य पैदा करते हैं और ये सभी को नष्ट कर देते हैं। सही काम करने के लिए कर्तव्य का बोध होना चाहिए। किसी भी नैतिक आचरण को सजा के डर से नहीं करना चाहिए। हमें राष्ट्र की भी सेवा करनी चाहिए, क्योंकि यदि राष्ट्र में शांति होगी तो राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में वृद्धि होगी। यदि राष्ट्र के शासन में भ्रष्टाचार हो तो वहां कोई कानून या व्यवस्था नहीं होगी, बल्कि सिर्फ अव्यवस्था ही होगी।

डेमोक्रीटस का ईश्वर सिद्धान्त

डेमोक्रीटस के अनुसार ईश्वर का अस्तित्व है। ईश्वर परमाणुओं से बना है। ईश्वर भी मनुष्य की भांति मरते हैं, लेकिन उनका जीवन काल मनुष्यों की अपेक्षा अधिक होता है। वे मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली होते हैं और उनमें उच्चस्तर की तर्कबुद्धि पाई जाती है। ईश्वर के बारे में मनुष्यों को सपनों में पता चलता है। वे मनुष्यों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते हैं, इसलिए मनुष्य को उनसे डरना नहीं चाहिए। अन्य सभी चीजों की तरह ही ईश्वर भी परमाणुओं की गति से संचालित होते हैं। मनुष्यों को अच्छे कार्यों को करने और उन पर चिंतन के लिए मानसिक शक्ति प्राप्त करनी चाहिए।

प्रकृतिवादी और सोफिस्ट दार्शनिक

सोफिस्ट आंदोलन 5वीं शताब्दी ई.पू. में, सुकरात के काल के अविर्भाव से कुछ ही पहले, शुरू हुआ। जीनोफोन, जो कि चौथी शताब्दी ई.पू. के एक इतिहासकार थे, ने सोफिस्टों को यायावर शिक्षकों के रूप में वर्णित किया और उन्हें धन के बदले में बुद्धि को बेचने वाले बताया। इस प्रकार, सोफिस्ट व्यावसायिक शिक्षक थे, जो एक से दूसरे शहर में घूमते हुए लोगों को, विशेषरूप से युवाओं को, शिक्षा देते थे। उन्हें उनके कार्य के लिए काफी धन मिलता था। सोफिस्टों के समय तक शिक्षण को पवित्र कार्य माना जाता था और इसे व्यावसायिक आधार पर नहीं लिया जाता था। सोफिस्ट स्वयं को बुद्धि और सदगणों का शिक्षक कहते थे। यद्यपि, इन शब्दों का सोफिस्टों के व्यवहारों में मूल अर्थ फलीभूत नहीं होता है। इन शब्दों का अर्थ उनके लिये मात्र दैनिक जीवन के व्यवहारिक मामलों में प्राप्त दक्षता या कौशल से था। उनका दावा था कि यही कौशलता या दक्षता व्यक्तियों को सफल बनाती है। उनके अनुसार भौतिक संपदा को अर्जित करने और उसका सुख भोगने के साथ ही समाज में सत्ता और प्रभावशाली स्थान अर्जित करना ही सफलता है।

बौद्धिक संदर्भ

सोफिस्टों के ज्ञानमीमांसात्मक और नैतिक संशयवाद तथा सापेक्षवाद ने सुकरात पूर्व दार्शनिकों के अमूर्त और आध्यात्मिक दर्शन के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया प्रदर्शित की थी। आरंभिक यूनानी दार्शनिक मुख्य रूप से ब्रहमांड के मूल तत्व की खोज में दिलचस्पी रखते थे। उनकी दार्शनिक व्याख्याऐं एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न थी। वास्तव में,

सोफिस्टों का ६ यान आरंभिक यूनानी दार्शनिकों के मतों में पाई गई भिन्नताओं के कारण ही प्राकृतिक समस्याओं से हटकर मनुष्य की समस्याओं की ओर आकर्षित हुआ। जगत् के विरोधी सिद्धान्तों की चकरा देने वाली दार्शनिक व्याख्याओं को देखते हुए सोफिस्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रकृति केन्द्रित दार्शनिकों के बीच असहमति मानव तर्क की नैसर्गिक सीमाओं के कारण है। यद्यपि सोफिस्टों ने मानव बुद्धि को आलोचना के लिए मुक्त रखा, परन्तु इसके फलस्वरूप वे पूर्णतः सापेक्षतावादी निष्कर्ष पर पहुंचे। उन्होंने ज्ञान की समस्त यथार्थता को नकार दिया और इस प्रकार संशयवाद के लिए राह बनाई।

सामाजिक राजनैतिक संदर्भ

पर्सिया के युद्धों (500-449 ई.पू.) के बाद यूनान में राजनैतिक जीवन की गतिविधियां बढ़ गई और ऐसा विशेषरूप से प्रजातांत्रिक एथेन्स में हुआ, जो इस क्षेत्र में सघन राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्रियाकलाप का केन्द्र बन गया था। स्वतंत्र नागरिकों से राष्ट्र के मामलों में सक्रिय भूमिका निभाने की उम्मीद की जाती थी और इसलिए उन्हें अधिक राजनैतिक जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता था। राजनीति को व्यवसाय बनाने के लिए साहित्यशास्त्र और भाषण कला में महारत होना काफी महत्व रखता था। वास्तव में सोफिस्ट भाषण को एक सशक्त हथियार समझते थे, जिससे वक्ता अपने श्रोताओं को सम्मोहित करके उन्हें अपने विचारों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित कर सकता था। यूनानी प्रजातंत्र में धन मुकदमा जीतकर कमाया जा सकता था और यह माना जाता था कि सोफिस्ट मुकदमा जीतने के सही तरीकों को सिखाने में सक्षम हैं। युवाओं को राजनैतिक तार्किक कौशलों की शिक्षा देकर सोफिस्टों ने बुद्धि और क्षमता के एक नए अभिजात्य वर्ग की रचना करने में सहायता की। इस बात पर स्वाभाविक रूप से उसे प्राचीन अभिजात्य वर्ग ने अप्रसन्नता जताई, जो ज्ञान और आचरण की पारंपरिक बौद्धिकता के साथ जीते थे।

सोफिस्ट शिक्षाए : मुख्य विशेषताएं

जैसा कि बताया गया है, सोफिस्टों का सरोकार, ब्रहमांड की संरचना अथवा सत् के मूल घटकों की अपेक्षा, ज्ञान और आचरण की समस्याओं का पता लगाने से था। प्राचीन दार्शनिकों के साथ उनके परिचय ने उन्हें इस निष्कर्ष पर पहुँचा दिया कि बाह्य जगत के वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करना असंभव है और मानव बुद्धि ब्रहमांड की पहेली को नहीं सुलझा सकती। इसलिए, मानव ज्ञान की मूल प्रकृति और नैतिक आचरण के व्यवहारिक नियमों की जाँच पड़ताल अधिक प्रासंगिक थी। अतः सोफिस्ट दर्शन का मुख्य योगदान, नीतिशास्त्र और ज्ञानशास्त्र के मूल प्रश्नों के साथ-साथ तार्किक जाँच पड़ताल के उचित तरीकों और लक्ष्य से संबन्धित था। सोफिस्टों ने प्रकति की समस्याओं से मनष्य की समस्याओं तक दार्शनिक दिलचस्पी के रूप में प्रमुख बदलाव प्रदर्शित किया, यद्यपि इस बात बदलाव को सुकरात के दर्शन में सबसे अच्छी तरह से देखा जा सकता है।

ज्ञानमीमांसा

सुकरात के पहले के दार्शनिकों ने सत् की प्रकृति का पता लगाते समय सत्य की प्राप्ति में मानवबुद्धि की क्षमता को विशेष महत्व नहीं दिया था। उन्होंने कभी भी बुद्धि की आलोचना करने की बात नहीं सोची थी। इसी पूर्वानुमान के कारण सोफिस्टों ने प्रश्न किया कि ये महान दार्शनिक सत् की प्रकृति के बारे में न केवल विपरीत बल्कि परस्पर विरोधाभासी निष्कर्षों पर क्यों और कैसे पहुंचे, जबकि वे सभी एक ही वस्तु की खोज कर रहे थे? इसके उत्तर में सोफिस्टों द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि ज्ञान विशेष रूप से ज्ञाता पर निर्भर करता है। ज्ञाता को जो सत्य प्रतीत होता है वह उसके लिए सत्य होता है। कोई वस्तुनिष्ठ सत्य नहीं होता, बल्कि सिर्फ व्यक्तिनिष्ठ मत होता है। इस सम्बंध में, प्रोटागोरस का प्रसिद्ध कथन; 'मनुष्य सभी वस्तुओं का मापदण्ड है', मनुष्य के सहजबुद्ध के निर्णयों के पक्ष में प्रकृतिवादी दार्शनिकों के विरोधाभासी निष्कर्षों का परित्याग करता है। इस प्रकार का मत,

ज्ञान के मामलों में, व्यक्ति विशेष को स्वयं अपने आप में सही-गलत का निर्णयकर्ता बना । देता है। इससे एक ही वस्तु के विषय में विभिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न मत हो सकते